

वेदवाङ्मय-परिचय एवं अपौरुषेयवाद

(दण्डीस्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

‘सनातनधर्म’ एवं ‘भारतीय संस्कृति’ का मूल आधारस्तम्भ विश्वका अति प्राचीन और सर्वप्रथम वाङ्मय ‘वेद’ माना गया है। मानवजातिके लौकिक (सांसारिक) तथा पारमार्थिक अभ्युदय-हेतु प्राकट्य होनेसे वेदको अनादि एवं नित्य कहा गया है। अति प्राचीनकालीन महातपा, पुण्यपुञ्ज ऋषियोंके पवित्रतम अन्तःकरणमें वेदके दर्शन हुए थे, अतः उसका ‘वेद’ नाम प्राप्त हुआ। ब्रह्मका स्वरूप ‘सत्-चित्-आनन्द’ होनेसे ब्रह्मको वेदका पर्यायवाची शब्द कहा गया है। इसीलिये वेद लौकिक एवं अलौकिक ज्ञानका साधन है। ‘तेने ब्रह्म हृदय आदिकवये०’—तात्पर्य यह कि कल्पके प्रारम्भमें आदिकवि ब्रह्माके हृदयमें वेदका प्राकट्य हुआ।

सुप्रसिद्ध वेदभाष्यकार महान् पण्डित सायणाचार्य अपने वेदभाष्यमें लिखते हैं कि ‘इष्टात्प्रतिष्ठारिह्यरयोरलौकिक-मुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः’—अर्थात् इष्ट (इच्छित) फलकी प्राप्तिके लिये और अनिष्ट वस्तुके त्यागके लिये अलौकिक उपाय (मानव-बुद्धिको अगम्य उपाय) जो ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ सिखलाता है, समझाता है, उसको वेद कहते हैं।

निरुक्त कहता है कि ‘विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति०’ अर्थात् जिसकी कृपासे अधिकारी मनुष्य (द्विज) सद्विद्या प्राप्त करते हैं, जिससे वे विद्वान् हो सकते हैं, जिसके कारण वे सद्विद्याके विषयमें विचार करनेके लिये समर्थ हो जाते हैं, उसे वेद कहते हैं।

‘आर्यविद्या-सुधाकर’ नामक ग्रन्थमें कहा गया है कि—

वेदो नाम वेद्यन्ते ज्ञायन्ते धर्मार्थकाममोक्षा अनेनेति व्युत्पन्न्या चतुर्वर्गज्ञानसाधनभूतो ग्रन्थविशेषः०॥

अर्थात् पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-विषयक सम्यक्-ज्ञान होनेके लिये साधनभूत ग्रन्थविशेषको वेद कहते हैं।

‘कामन्दकीय नीति’ भी कहती है—‘आत्मानमन्विच्छ०।’ ‘यस्तं वेद स वेदवित्॥’ अर्थात् जिस (नरपुञ्जव)-को आत्मसाक्षात्कार किंवा आत्मप्रत्यभिज्ञा हो गया, उसको ही वेदका वास्तविक ज्ञान होता है। कहनेका तात्पर्य यह

है कि आत्मज्ञानका ही पर्याय वेद है।

श्रुति भगवती बतलाती है कि ‘अनन्ता वै वेदाः॥’ वेदका अर्थ है ज्ञान। ज्ञान अनन्त है, अतः वेद भी अनन्त हैं। तथापि मुण्डकोपनिषद्की मान्यता है कि वेद चार हैं—‘ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः॥’ (१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद और (४) अथर्ववेद। इन वेदोंके चार उपवेद इस प्रकार हैं—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्वेति ते त्रयः।

स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः॥

उपवेदोंके कर्ताओंमें आयुर्वेदके कर्ता धन्वन्तरि, धनुर्वेदके कर्ता विश्वमित्र, गान्धर्ववेदके कर्ता नारदमुनि और स्थापत्यवेदके कर्ता विश्वकर्मा हैं।

मनुस्मृति कहती है—‘श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः’ अर्थात् वेदोंको ही श्रुति कहते हैं। ‘आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्ते सा श्रुतिः॥’ अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर आजतक जिसकी सहायतासे बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको सत्यविद्या ज्ञात हुई, उसे ‘श्रुति’ कहते हैं। ‘श्रु’ का अर्थ है ‘सुनना’, अतः ‘श्रुति’ माने हुआ ‘सुना हुआ ज्ञान।’ वेदकालीन महातपा सत्युरुषोंने समाधिमें जो महाज्ञान प्राप्त किया और जिसे जगत्के आध्यात्मिक अभ्युदयके लिये प्रकट भी किया, उस महाज्ञानको ‘श्रुति’ कहते हैं।

श्रुतिके दो विभाग हैं—(१) वैदिक और (२) तात्त्विक—‘श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तात्त्विकी च।’ मुख्य तत्त्व तीन माने गये हैं—(१) महानिर्वाण-तत्त्व, (२) नारदपाञ्चरात्र-तत्त्व और (३) कुलार्णव-तत्त्व।

वेदके भी दो विभाग हैं—(१) मन्त्रविभाग और (२) ब्राह्मणविभाग—‘वेदो हि मन्त्रब्राह्मणभेदेन द्विविधः।’ वेदके मन्त्रविभागको संहिता भी कहते हैं। संहितापरक विवेचनको ‘आरण्यक’ एवं संहितापरक भाष्यको ‘ब्राह्मणग्रन्थ’ कहते हैं। वेदोंके ब्राह्मणविभागमें ‘आरण्यक’ और ‘उपनिषद्’का भी समावेश है। ब्राह्मणग्रन्थोंकी संख्या १३ है, जैसे ऋग्वेदके २, यजुर्वेदके २, सामवेदके ८ और अथर्ववेदके १। मुख्य ब्राह्मणग्रन्थ पाँच हैं—

(१) ऐतरेय ब्राह्मण, (२) तैत्तिरीय ब्राह्मण, (३) तलवकार ब्राह्मण, (४) शतपथ ब्राह्मण और (५) ताण्ड्य ब्राह्मण।

उपनिषदोंकी संख्या वैसे तो १०८ है, परंतु मुख्य १२ माने गये हैं, जैसे—(१) ईश, (२) केन, (३) कठ, (४) प्रश्न, (५) मुण्डक, (६) माण्डूक्य, (७) तैत्तिरीय, (८) ऐतरेय, (९) छान्दोग्य, (१०) बृहदारण्यक, (११) कौषीतकि और (१२) श्वेताश्वत्र।

वेद पौरुषेय (मानवनिर्मित) है या अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) ? इस महत्वपूर्ण प्रश्नका स्पष्ट उत्तर ऋग्वेद (१। १६४। ४५)-में इस प्रकार है—‘वेद’ परमेश्वरके मुखसे निकला हुआ ‘परावाक्’ है, वह ‘अनादि’ एवं ‘नित्य’ कहा गया है। वह अपौरुषेय ही है।

इस विषयमें मनुस्मृति कहती है कि अति प्राचीन कालके ऋषियोंने उत्कट तपस्याद्वारा अपने तपःपूत्र हृदयमें ‘परावाक्’ वेदवाइमयका साक्षात्कार किया था, अतः वे मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाये—‘ऋषयो मन्त्रद्रष्टाः।’

बृहदारण्यकोपनिषद् (२। ४। १०)-में उल्लेख है—‘अस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यद्वावेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाद्विरसः।’ अर्थात् उन महान् परमेश्वरके द्वारा (सृष्टि-प्राकट्य होनेके साथ ही) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद निःश्वासकी तरह सहज ही बाहर प्रकट हुए। तात्पर्य यह है कि परमात्माका निःश्वास ही वेद है। इसके विषयमें वेदके महापण्डित सायणाचार्य अपने वेदभाष्यमें लिखते हैं—

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।

निर्ममे तमहं वदे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

सारांश यह कि वेद परमेश्वरका निःश्वास है, अतः परमेश्वरद्वारा ही निर्मित है। वेदसे ही समस्त जगत्का निर्माण हुआ है। इसीलिये वेदको अपौरुषेय कहा गया है।

सायणाचार्यके इन विचारोंका समर्थन पाश्चात्य वेदविद्वान् प्रो० विल्सन, प्रो० मैक्समूलर अदिने अपने पुस्तकोंमें किया है। प्रो० विल्सनसाहब लिखते हैं कि ‘सायणाचार्यका वेदविषयक ज्ञान अति विशाल और अति गहन है, जिसकी समकक्षताका दावा कोई भी यूरोपीय विद्वान् नहीं कर सकता।’ प्रो० मैक्समूलरसाहब लिखते हैं कि ‘यदि मुझे सायणाचार्यरचित बृहद् वेदभाष्य पढ़नेको नहीं मिलता तो मैं वेदार्थोंके दुर्भेद्य किलामें प्रवेश ही

नहीं पा सका होता।’ इसी प्रकार पाश्चात्य वेदविद्वान् वेबर, बेनफी, राथ, ग्राम्सन, लुडविंग, ग्रिफिथ, कीथ तथा विंटरनित्ज आदिने सायणाचार्यके वेदविचारोंका ही प्रतिपादन किया है।

निरुक्तकार ‘यास्काचार्य’ भाषाशास्त्रके आद्यपण्डित माने गये हैं। उन्होंने अपने महाग्रन्थ वेदभाष्यमें स्पष्ट लिखा है कि ‘वेद अनादि, नित्य एवं अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) ही है।’ उनका कहना है कि ‘वेदका अर्थ समझे बिना केवल वेदपाठ करना पशुकी तरह पीठपर बोझा ढोना ही है; क्योंकि अर्थज्ञानरहित शब्द (मन्त्र) प्रकाश (ज्ञान) नहीं दे सकता। जिसे वेद-मन्त्रोंका अर्थ-ज्ञान हुआ है, उसीका लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण होता है।’ ऐसे वेदार्थज्ञानका मार्गदर्शक निरुक्त है।

जर्मनीके वेदविद्वान् प्रो० मैक्समूलरसाहब कहते हैं कि ‘विश्वका प्राचीनतम वाइमय वेद ही है, जो दैविक एवं आध्यात्मिक विचारोंको काव्यमय भाषामें अद्भुत रीतिसे प्रकट करनेवाला कल्याणप्रदायक है। वेद परावाक् है।’

निःसंदेह परमेश्वरने ही परावाक् (वेदवाणी)-का निर्माण किया है—ऐसा महाभारत, शान्तिपर्व (२३२। २४)-में स्पष्ट कहा गया है—

अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ॥

अर्थात् जिसमेंसे सर्वजगत् उत्पन्न हुआ, ऐसी अनादि वेद-विद्यारूप दिव्य वाणीका निर्माण जगन्निर्माताने सर्वप्रथम किया।

ऋषि वेदमन्त्रोंके कर्ता नहीं अपितु द्रष्टा ही थे—‘ऋषयो मन्त्रद्रष्टाः।’ निरुक्तकारने भी कहा है—वेदमन्त्रोंके साक्षात्कार होनेपर साक्षात्कारीको ऋषि कहा जाता है—‘ऋषिर्दर्शनात्।’ इससे स्पष्ट होता है कि वेदका कर्तृत्व अन्य किसीके पास नहीं होनेसे वेद ईश्वरप्रणीत ही है, अपौरुषेय ही है।

भारतीय दर्शनशास्त्रके मतानुसार शब्दको नित्य कहा गया है। वेदने शब्दको नित्य माना है, अतः वेद अपौरुषेय है यह निश्चित होता है। निरुक्तकार कहते हैं कि ‘नियतानुपूर्व्या नियतवाचो युक्तयः।’ अर्थात् शब्द नित्य है, उसका अनुक्रम नित्य है और उसकी उच्चारण-पद्धति भी नित्य है, इसीलिये वेदके अर्थ नित्य हैं। ऐसी वेदवाणीका निर्माण स्वयं परमेश्वरने ही किया है।

शब्दकी चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं—(१) परा, (२) पश्यन्ती, (३) मध्यमा और (४) वैखरी। ऋष्वेद (१। १६४। ४५)-में इनके विषयमें इस प्रकार कहा गया है—

चत्वारिं वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्रह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्ग्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

अर्थात् वाणीके चार रूप होनेसे उन्हें ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। वाणीके तीन रूप गुप्त हैं, चौथा रूप शब्दमय वेदके रूपमें लोगोंमें प्रचारित होता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञानको परावाक् कहते हैं। उसे ही वेद कहा गया है। इस वेदवाणीका साक्षात्कार महातपस्वी ऋषियोंको होनेसे इसे 'पश्यन्तीवाक्' कहते हैं। ज्ञानस्वरूप वेदका आविष्कार शब्दमय है। इस वाणीका स्थूल स्वरूप ही 'मध्यमावाक्' है। वेदवाणीके ये तीनों स्वरूप अत्यन्त रहस्यमय हैं। चौथी 'वैखरीवाक्' ही सामान्य लोगोंकी बोलचालकी है। शतपथब्राह्मण तथा माण्डूक्योपनिषदमें कहा गया है कि वेदमन्त्रके प्रत्येक पदमें, शब्दके प्रत्येक अक्षरमें एक प्रकारका अद्भुत सामर्थ्य भरा हुआ है। इस प्रकारकी वेदवाणी स्वयं परमेश्वरद्वारा ही निर्मित है, यह निःशंक है।

शिवपुराणमें आया है कि ३०के 'अ' कार, 'उ' कार, 'म' कार और सूक्ष्मनाद; इनमेंसे (१) ऋष्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद तथा (४) अथर्ववेद निःसृत हुए। समस्त वाङ्मय ओंकार (३०)-से ही निर्मित हुआ। 'ओंकारं बिंदुसंयुक्तम्' तो ईश्वररूप ही है। श्रीमद्भगवद्गीता (७। ७)-में भी ऐसा ही उल्लेख है—

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

श्रीमद्भगवत् (६। १। ४०)-में तो स्पष्ट कहा गया है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यर्थमस्तद्विपर्ययः ।

वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम ॥

अर्थात् वेदभगवान्ने जिन कायेंको करनेकी आज्ञा दी है वह धर्म है और उससे विपरीत करना अर्थर्म है। वेद नारायणरूपमें स्वयं प्रकट हुआ है, ऐसा श्रुतिमें कहा गया है।

श्रीमद्भगवत् (१०। ४। ४१)-में ऐसा भी वर्णित है—

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।

श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥

अर्थात् वेदज्ञ (सदाचारी भी) ब्राह्मण, दुधारू गाय, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, सहनशीलता और यज्ञ—ये श्रीहरि (परमेश्वर)-के स्वरूप हैं।

मनुस्मृति (२। ५) वेदको धर्मका मूल बताते हुए कहती है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

अर्थात् समग्र वेद एवं वेदज्ञ (मनु, पराशर, याज्ञवल्क्यादि)-की स्मृति, शील, आचार, साधु (धार्मिक)-के आत्माका संतोष—ये सभी धर्मोंके मूल हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति (१। ७)-में भी कहा गया है—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥

अर्थात् श्रुति, स्मृति, सत्पुरुषोंका आचार, अपने आत्माकी प्रीति और उत्तम संकल्पसे हुआ (धर्माविरुद्ध) काम—ये पाँच धर्मके मूल हैं। इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें वेद सर्वश्रेष्ठ स्थानपर है। वेदका प्रामाण्य त्रिकालाबाधित है।

भारतीय आस्तिक दर्शनशास्त्रके मतमें शब्दके नित्य होनेसे उसका अर्थके साथ स्वयम्भू-जैसा सम्बन्ध होता है। वेदमें शब्दको नित्य समझनेपर वेदको अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) माना गया है। निरुक्तकार भी इसका प्रतिपादन करते हैं। आस्तिक-दर्शनने शब्दको सर्वश्रेष्ठ प्रमाण मान्य किया है।

इस विषयमें मीमांसा-दर्शन तथा न्याय-दर्शनके मत भिन्न-भिन्न हैं। जैमिनीय मीमांसक, कुमारिल आदि मीमांसक, आधुनिक मीमांसक तथा सांख्यवादियोंके मतमें वेद अपौरुषेय, नित्य एवं स्वतःप्रमाण हैं। मीमांसक वेदको स्वयम्भू मानते हैं। उनका कहना है कि वेदकी निर्मितिका प्रयत्न किसी व्यक्ति-विशेषका अथवा ईश्वरका नहीं है। नैयायिक ऐसा समझते हैं कि वेद तो ईश्वरप्रोक्त है। मीमांसक कहते हैं कि भ्रम, प्रमाद, दुराग्रह इत्यादि दोषयुक्त होनेके कारण मनुष्यके द्वारा वेद-जैसे निर्दोष महान् ग्रन्थरत्नकी रचना शक्य ही नहीं है। अतः वेद

अपौरुषेय ही है। इससे आगे जाकर नैयायिक ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि ईश्वरने जैसे सृष्टि की, वैसे ही वेदका निर्माण किया; ऐसा मानना उचित ही है।

श्रुतिके मतानुसार वेद तो महाभूतोंका निःश्वास (यस्य निःश्वसितं वेदा) है। श्वास-प्रश्वास स्वतः आविर्भूत होते हैं, अतः उनके लिये मनुष्यके प्रयत्नकी अथवा बुद्धिकी अपेक्षा नहीं होती। उस महाभूतका निःश्वासरूप वेद तो अदृष्टवशात्, अबुद्धिपूर्वक स्वयं आविर्भूत होता है।

वेद नित्य-शब्दकी संहति होनेसे नित्य है और किसी भी प्रकारसे उत्पाद्य नहीं है; अतः स्वतः आविर्भूत वेद किसी भी पुरुषसे रचा हुआ न होनेके कारण अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) सिद्ध होता है। इन सभी विचारोंको दर्शनशास्त्रमें अपौरुषेयवाद कहा गया है।

अवैदिक दर्शनको नास्तिक दर्शन भी कहते हैं, क्योंकि वह वेदको प्रमाण नहीं मानता, अपौरुषेय स्वीकार नहीं करता। उसका कहना है कि इहलोक (जगत्) ही आत्माका क्रीडास्थल है, परलोक (स्वर्ग) नामकी कोई वस्तु नहीं है, 'काम एवैकः पुरुषार्थः'—काम ही मानव-जीवनका एकमात्र पुरुषार्थ होता है, 'मरणमेवापवर्गः'—मरण (मृत्यु) माने ही मोक्ष (मुक्ति) है, 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'—जो प्रत्यक्ष है वही प्रमाण है (अनुमान प्रमाण नहीं है)। धर्म ही नहीं है, अतः अधर्म नहीं है; स्वर्ग-नरक नहीं हैं। 'न परमेश्वरोऽपि कश्चित्'—परमेश्वर-जैसा भी कोई नहीं है, 'न धर्मः न मोक्षः'—न तो धर्म है न मोक्ष है। अतः जबतक शरीरमें प्राण है, तबतक सुख प्राप्त करते हैं—इस विषयमें नास्तिक चार्वाक-दर्शन स्पष्ट कहता है—

यावज्जीवं सुखं जीवेदृपुणं कृत्वा धृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

अर्थात् जबतक देहमें जीव है तबतक सुखपूर्वक जीयें, किसीसे ऋण ले करके भी घी पीयें; क्योंकि एक बार देह (शरीर) मृत्युके बाद जब भस्मीभूत हुआ, तब फिर उसका पुनरागमन कहाँ? अतः 'खाओ, पीओ और मौज करो'—यही है 'नास्तिक-दर्शन' या 'अवैदिक-दर्शन' का संदेश। इसको लोकायत-दर्शन, बाह्यस्पत्य-

दर्शन तथा चार्वाक-दर्शन भी कहते हैं।

चार्वाक-दर्शन शब्दमें 'चर्व'का अर्थ है—खाना। इस 'चर्व'पदसे ही 'खाने-पीने और मौज' करनेका संदेश देनेवाले इस दर्शनका नाम 'चार्वाक-दर्शन' पड़ा है। 'गुणरत्न' ने इसकी व्याख्या इस प्रकारसे की है—परमेश्वर, वेद, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, आत्मा, मुक्ति इत्यादिका जिसने 'चर्वण' (नामशेष) कर दिया है, वह 'चार्वाक-दर्शन' है। इस मतके लोगोंका लक्ष्य स्वमतस्थापनकी अपेक्षा परमत्वाण्डनके प्रति अधिक रहनेसे उनको 'वैतण्डिक' कहा गया है। वे लोग वेदप्रामाण्य मानते ही नहीं।

(१) जगत्, (२) जीव, (३) ईश्वर और (४) मोक्ष—ये ही चार प्रमुख प्रतिपाद्य विषय सभी दर्शनोंके होते हैं। आचार्य श्रीहरिभद्रने 'षड्दर्शन-समुच्चय' नामका अपने ग्रन्थमें (१) न्याय, (२) वैशेषिक, (३) सांख्य, (४) योग, (५) मीमांसा और (६) वेदान्त—इन छःको वैदिक दर्शन (आस्तिक-दर्शन) तथा (१) चार्वाक, (२) बौद्ध और (३) जैन—इन तीनको 'अवैदिक दर्शन' (नास्तिक-दर्शन) कहा है और उन सबपर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है।

वेदको प्रमाण माननेवाले आस्तिक और न माननेवाले नास्तिक हैं, इस दृष्टिसे उपर्युक्त न्याय-वैशेषिकादि षड्दर्शनको आस्तिक और चार्वाकादि दर्शनको नास्तिक कहा गया है।

दर्शनशास्त्रका मूल मन्त्र है—'आत्मानं विद्धि।' अर्थात् आत्माको जानो। पिण्ड-ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत हुआ एकमेव आत्म-तत्त्वका दर्शन (साक्षात्कार) कर लेना ही मानव-जीवनका अन्तिम साध्य है, ऐसा वेद कहता है। इसके लिये तीन उपाय हैं—वेदमन्त्रोंका श्रवण, मनन और निदिध्यासन—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यशोपपत्तिभिः।

मत्या तु सततं ध्येय एते दर्शनहेतवे॥

इसीलिये तो मनीषी लोग कहते हैं—'यस्तं वेद स वेदवित्।' अर्थात् ऐसे आत्मतत्त्वको जो सदाचारी व्यक्ति जानता है, वह वेदज्ञ (वेदको जाननेवाला) है।